भूपेन्द्र सिंह
bsinghedu@vmou.ac.in
डॉ. पतंजलि मिश्र
pmishra@vmou@ac.in

सवाल पूछने का सवाल

सार

स्थानीय परिवेश केवल भौतिक अथवा प्राकृतिक नहीं होता, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक भी होता है। प्रत्येक बच्चे की स्वयं की अपनी विचार-प्रक्रिया होती है। लेकिन बच्चे के कक्षा में पूछने पर प्रतिबन्ध लगाने से उसकी प्रतिभा का दमन किया जाना एक भविष्य को दिशाविहीन करने जैसा है। एक विद्यालय के लिए यह आवश्यक है कि वह बच्चे की इस विचार-प्रक्रिया को सुने और उससे उत्पन्न विचारधारा को उन्नत बनाने के लिए हर सम्भव प्रयास करे। चूँकि प्रत्येक बच्चा एक भिन्न समुदाय, संस्कृति और परिवेश से आता है और उसके पास उसके परिवेश से जुड़ी हुई लोक-कथाएं, लोकगीत, चुटकुले, कहानियाँ, कलाएँ और सन्दर्भ प्रसंग होते हैं, इनसे बहु-सांस्कृतिक वातावरण को समृद्ध बनाने में मदद मिल सकती है और चुप्पी की संस्कृति को बढ़ावा देने वाले तत्वों पर लगाम लगाई जा सकती है। इस लेख में बच्चे के कक्षा में सवाल पूछने से लेकर अपनी बात रखने को दबाने के विभिन्न कारकों और उसके निवारण के बारे में चर्चा की गई है।

मुख्य शब्द: चुप्पी की संस्कृति, बहु-सांस्कृतिक वातावरण, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 (एन. सी.एफ.-2005), शिक्षक शिक्षा पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ढाँचा (एन.सी.एफ.टी.ई.-2009)

19वीं शताब्दी तक बालिकाओं की कम बोलने, कम लोगों से सम्पर्क रखने और मित्र न बनाने की स्थिति इस बात की ओर संकेत करती नज़र आती है कि चुप्पी की संस्कृति न तो नयी है, न अपरिचित न ही इसका आधुनिकता से कोई सीधा सम्बन्ध है। यह तो सभ्यताओं के विकास के साथ ही या यों कहें कि विचारों को सीमित (न कि उनका परिमार्जन) करने के साथ ही उत्पन्न हुई है। यहाँ परिमार्जन शब्द का उपयोग इसीलिए नहीं किया गया है क्योंकि परिमार्जन शब्द अपनी गुणवत्ता और उसके निरन्तर उर्ध्वगामी विकास का परिचायक है। दुनियाभर के देशों ने अपनी-अपनी शिक्षा पद्धतियाँ और शिक्षा तन्त्र विकसित कर लिए हैं। परन्तु कहीं न कहीं सभी के लक्ष्य और उद्देश्य समान ही हैं। आज ब्रिटेन की शिक्षा का मूलमन्त्र यह है कि 15-16 वर्ष तक के बच्चे का इतना विकास हो जाये कि वह अकेला पूरी दुनिया में घूम सके (शर्मा, 2014, p.72) और स्वयं के लिए आजीविका की व्यवस्था कर सके।

आमतौर पर अध्यापकों को अपनी-अपनी कक्षाओं में बच्चों के 'दुराग्रही' होने को लेकर विचार-विमर्श करते देखा जा सकता है। वैसे मेरे हिसाब से 'दुराग्रही' होना बुरी बात नहीं। यदि बच्चा इस बात की ज़िद किये बैठा है कि आज उसका पढ़ने का मन नहीं है, तो वैसे हमें उन शिक्षकों से भी कोई नाराजगी नहीं होनी चाहिए, क्योंकि वे भी बच्चे की हठधर्मिता को अपनी नाक का सवाल समझने की भूल जो कर बैठते हैं। इस निहायत जायज़ विविध प्रकारों से व्यक्त ज़िद को कई सिद्धांतों और नियमों से दमन करने के कारण चुप्पी की संस्कृति का जन्म होता है। "किताबी ज्ञान को दोहराने की क्षमता के विकास के बजाय पाठ्यचर्या बच्चों को इतना सक्षम बनाए कि वे अपनी आवाज ढूँढ सकें, अपनी उत्सुकता का पोषण कर सकें, स्वयं करें, सवाल पूछें......" (एन. सी.एफ., 2005, p.15)। मेरे मित्र की छः वर्ष की बिटिया कई बार ऐसे सवाल मेरे मित्र से पूछ लेती है, जिसका उत्तर शायद दुनिया भर के वैज्ञानिकों के पास भी नहीं। सटीक तो

नहीं लेकिन उसकी जिज्ञासा से संवाद करने के लिए उन्हें कई वैज्ञानिकों का दिमाग लगाना पड़ता है। हर शिक्षक को यह ध्यान रखना चाहिए कि उसकी कक्षा में आने से पूर्व भी बच्चों के पास परिवार और अभिभावकों से मिले कुछ अनुभव तो होंगे ही। हालांकि तथ्य यह भी है कि अधिकतर अभिभावक भी बच्चों को लोगों के सम्पर्क में आने से रोकते-टोकते हैं। कक्षा में बच्चों के दुराग्रही होने अथवा चुप्पी साधने को साधारण रूप में नहीं लिया जाना चाहिए। शिक्षकों को इन दोनों स्थितियों से निपटने के लिए पहले अपने ज्ञान को व्यावहारिकता की प्रयोगशाला में परख कर ही किसी निर्णय पर पहुँचना चाहिए।

जवाब ग़लत होने का डर

प्रसिद्द कहावत है कि दूध का जला छाछ भी फूँक-फूँक कर पीता है। लेकिन आज के अभिभावक बालक को सामान्य ग़लती भी नहीं करने देते। यही ग़लत होने का डर बालकों को पूछने से रोकने का एक महत्वपूर्ण कारण है। एक बार मेरे एक मित्र की बेटी, जो कक्षा बारह में अध्ययनरत थी, ने मेरे मित्र से, अपनी सहेलियों के साथ मसूरी और नैनीताल घूमने जाने के लिए अनुमति मांग ली। प्रश्न के ख़त्म होते-होते, न कहने के साथ ही जितने प्रवचन मेरे मित्र के मुख से निकले बयां नहीं किया जा सकता। सामान्यत: कुछ भी ग़लत होने या अनहोनी होने का डर बालकों को चुप रहने के लिए बाध्य करता है। दुनियाभर की कक्षा में भी अक्सर यही होता है, यदि कभी न बोलने वाला बालक भूलवश कुछ भी पूछ ले तो शिक्षक उसकी बात को तवज्जो देने की बजाय, मौनव्रत का तोड़ना बताकर मज़ाक बनाने लगते हैं। लेकिन शायद वे शिक्षक अनायास ही ये भूल कर रहे होते हैं कि ऐसे एक बार (अथवा असल में तो बार-बार) रोकने, टोकने और मज़ाक बनाने से यह मौन-व्रत जीवन भर की चुप्पी को बढ़ावा दे रहा है। एक बार की गई ग़लती और उसके लिए मिली सज़ा जीवन के लिए सौ सबक देकर जाती है, ऐसा सोचकर बालक प्रश्न करना या कुछ भी पूछना ही छोड़ देते हैं। कई बार कक्षाओं में अध्यापक प्रश्न पूछने के लिए कहता है साथ में वो यह भी कहता है कि यदि पाठ में कुछ न समझ में आये तो आप बार- बार पूछें लेकिन यदि कोई विद्यार्थी एक बार से ज़्यादा बार पूछने का साहस जुटाता है तो अध्यापक उसे झिड़क देता है कि पूरी कक्षा को तो समझ में आ गया, एक तुम ही ऐसे हो जो मूर्ख हो जिसे एक छोटी सी बात नहीं समझ में आ रही है।

ब्रिटेन के प्रसिद्द अख़बार 'द टेलीग्राफ' में 28 मार्च 2013 को छपे एक शोध लेख के अनुसार प्रतिदिन औसतन 300 से अधिक सवाल बच्चे अपनी माँ से पूछ लेते हैं। उनमें भी बेटियां सर्वाधिक सवाल करती हैं। माता की तरह एक शिक्षक को भी सहनशील होने की आवश्यकता है। विद्यार्थियों की टिप्पणी को अनसुनी करने और चुप्पी को सख्ती से कक्षा में लागू करने की बजाय अगर शिक्षक विद्यार्थियों को चर्चा के लिए प्रोत्साहित करें तो पाएंगे कि कक्षा जीवंत बन गई है और शिक्षण पूर्वानुमय और नीरस नहीं रह जाती है, बल्कि वह मानसिक अंत:क्रिया का रोमांच स्थल बन जाती है। इस तरह का वातावरण हर आयु के बच्चे में आत्मबल और आत्म-विश्वास का विकास करेगा। इससे आगे चलकर अधिगम बेहतर बनेगा (एन.सी.एफ., 2005, pp.92-93)। प्रश्न कोई भी हो बालक की जिज्ञासा से संवाद किया जाना चाहिए। प्रश्न ग़लत है तो ये बताना कि प्रश्न इस कारण से ग़लत है और यदि सही है तो उसका उत्तर देना, दोनों परिस्थितियां बालक को प्रश्न पूछने के लिए प्रेरित करेंगी।

पूछने और न पूछने का द्वंद्व

1996 में डेलर्स कमीशन की रिपोर्ट का सुझाव था कि शिक्षा चार स्तम्भों पर टिकी हुई है जिनका अभिप्राय है कि शिक्षा, ज्ञान लेने के लिए (Learning to Know), उपयोग के लिए (Learning to Do), अपने अस्तित्व के लिए (Learning to Be) और सहचर्य पूर्ण जीवन जीना सीखने (Learning to Live Together) के लिए होनी चाहिए। इधर भारतीय ज्ञान परम्परा में ज्ञात आश्रम व्यवस्था या फिर उससे भी पहले से वसुधैव कुटुम्बकम की शिक्षा दी जाती रही है। अतः आज के शिक्षक को बच्चे को पूछने के लिए प्रेरित करने के लिए अपनी ही प्राचीन ज्ञान परम्परा की जड़ों में झाँकने की जरुरत हैं। जब कोई बालक शिक्षक से अपना प्रश्न पूछता है तो उसका अपनी बात को कहने का ढंग वाक्-चातुर्य बन जाता

है (दवे, p.3)। अतः वाक्-चातुर्य का ज्ञान देने के लिए बच्चे को बोलने की स्वतन्त्रता, बालक के ग़लत उत्तरों को स्वीकार कर सही का ज्ञान कराने का धैर्य, स्पष्टवादिता का अभिवादन और टोकने की प्रवृत्ति को छोड़ना होगा। आज आवश्यकता है "सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै, तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै (शर्मा एंड शर्मा, 2017, p.24)" को पुनः दोहराने की। जिसका अर्थ है कि हे ईश्वर, हम शिष्य और आचार्य दोनों एक-दूसरे की रक्षा करें। हम दोनों साथ-साथ ज्ञान का अर्जन करें। हम दोनों का तेज साथ-साथ बढे। हम दोनों कभी भी एक-दूसरे के प्रति द्वेष न रखें। इस प्रकार की परम्परा से शिक्षक और शिष्य के सम्बन्धों में घनिष्ठता आएगी और पूछने व बताने के माध्यम से विचारों में प्रमाणिकता आएगी।

क्या मेरा प्रश्न करना सही होगा ?

मुझे याद है जब मेरे पड़ोस में रहने वाला रोहन 10वीं कक्षा में था। उसकी कक्षा के लगभग सभी बच्चे गणित, विज्ञान और अंग्रेजी विषय का ट्यूशन लिया करते थे। बस वह, उनसे अलग था और इसका हर्जाना उसे उसकी कक्षा में भी भुगतना पड़ता था। वह जब भी कोई सवाल गणित, विज्ञान और अंग्रेजी के कालांश में पूछने की जुर्रत करता तो लगभग सभी निगाहें उसकी तरफ ऐसे होती थीं, जैसे दुनिया के सभी आश्चर्य उस अकेले में ही देखे जा सकते हों। लगभग हर बार उसके प्रश्न को ग़लत बताने अथवा ये कहकर टालने की कोशिश होती थी कि पिछले पाठ को तुमने ठीक ढंग से नहीं पढ़ा, या फलां सूत्र, फलां सिद्धांत तो तुम्हें पता ही नहीं है। उससे भी महत्त्वपूर्ण तो ये था कि ट्यूशन करने वाले बच्चों के पास कभी कोई प्रश्न ही नहीं होता था। आधुनिकता व प्रतिष्ठा के प्रश्न की होड़ में अभिभावक और ज्यादा कमाने की लालसा में शिक्षक बच्चों के मस्तिष्क के सोच सकने की क्षमताओं पर ताला लगाने में इस कदर लगे हुए हैं कि बच्चा बाहर की दुनिया, समाज, समुदाय और अब तो अन्य पारिवारिक सदस्यों से कुछ व्यवहारिक ज्ञान नहीं ले पा रहा है। यही बच्चों के मनोबल को गिराने और उस पर चुप्पी की मोहर लगाने के कारण हैं। यदि बच्चा ज्ञान लेकर ही जन्म लेता तो इन विद्यालयों और शिक्षकों की जरुरत ही क्या थी? अतः प्रश्न कोई भी हो लेकिन शिक्षक को यह मानना चाहिए कि बच्चे को उस प्रश्न से सम्बंधित कुछ नहीं आता और यह उसकी जिम्मेदारी है कि उस प्रश्न सम्बंधित सभी संप्रत्ययों को वो ठीक तरीके से विद्यार्थी को समझाएं। तभी वह अच्छा शिक्षण कर पाने में सक्षम होगा। एक शिक्षक को बच्चों के प्रश्नों को समझना, प्राकृतिक और सामाजिक घटनाओं के प्रति उनका दृष्टिकोण एवं टिप्पणियां, सीखने के प्रति बच्चों का अवधान (Attention), पूर्व-अवधारणाओं और ज्ञान के प्रति नज़रिया, आदि की पहचान करने में बालक के साथ संलग्न होने की जरुरत है। इस संलग्नता से शिक्षक को यह भी समझने में सहायता मिलेगी कि शिक्षा रेखीय प्रक्रिया नहीं बल्कि सर्पिलाकार प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया से असंलग्नता को शिक्षक, अधिगम के सिद्धांतों के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में असफल होने से महसूस कर सकता है (एन.सी.एफ.टी.ई., 2009, p.28)।

भय की कक्षा से संवाद का मंच

बच्चे जब विद्यालय में प्रवेश लेते हैं तो उन्हें ये पता नहीं होता कि वहाँ क्या होता होगा। क्या घर जैसा माहौल मिलेगा या कुछ और। यदि भारतीय ज्ञान परम्परा की जड़ों को देखें तो पाते हैं कि खुली हवादार जगह, घने वृक्षों के बीच, नदियों के किनारे चलती कक्षा का आभास और स्नेहपूर्ण व्यावहारिक संवाद का दृश्य उभर कर आता है। पिता और शिक्षक में अन्तर ही नहीं पता चल पाता कि ज्ञान पिता, पुत्रों को दे रहा है या शिक्षक अपने शिष्यों को। तो फिर आज ऐसा क्या हो गया? अतः शिक्षकों को अपनी कक्षाओं को ऐसी जगह बना देनी चाहिए जहाँ किसी चलते हुए पाठ के दौरान बच्चे खुल कर प्रश्न पूछ पाएँ, और अपने सहपाठियों और शिक्षक के साथ संवाद कर पाएँ। जब तक वे अपने अनुभव नहीं बताते, अपनी शंकाओं को दूर नहीं करते, सवाल नहीं करते, वे सीखने की प्रक्रिया का हिस्सा नहीं बन पाएँगे (एन.सी.एफ., 2005, p.92)। स्नेह बालकों के लिए स्वयं से और दूसरों से खुलकर विचारों के आदान-प्रदान का मार्ग प्रशस्त करने में सहायक है। कभी-कभी विचारों अथवा स्वयं की बात के असफल होने का डर भी बालकों में प्रश्न पूछने में बाधक होता है। अतः असफल होने के बहुतेरे उदाहरण

जैसे लियोनार्डो-द-विन्ची अपने बचपन में अक्षरों तक को नहीं बना पाते थे, अल्बर्ट आइन्स्टीन बचपन में पढ़ने में कमजोर थे, एडिसन ने बल्ब के आविष्कार से पहले 1000 बार से भी ज्यादा असफल प्रयास किए थे, आदि पहले असफल होने और प्रयास से सफ़लता प्राप्त करने के लिए बताए जा सकते हैं।

एक शिक्षक या एक शिक्षा का चिकित्सक

चिकित्सक वह जो किसी व्यक्ति की शारीरिक व्याधियों की पहचान करके उससे मुक्ति दिलाता है। देखा जाये तो कहीं न कहीं यही कार्य शिक्षक का भी है, अन्तर सिर्फ इतना सा है कि शिक्षा को हम सजीव नहीं मानते, लेकिन शिक्षक भी चिकित्सा करता है ये बात अलग है कि उसके रोगी को विद्यार्थी के रूप में जाना जाता है (शिबले, 2010)। एक बालक को सिखाने के लिए प्रेरित करने हेतु शिक्षक बार-बार कक्षा में दोहराता है कि कुछ समझ नहीं आता है तो मुझसे पूछो और बालक भी यही समझते हैं की गुरूजी के पास हर प्रश्न (जिसे चिकित्सक की भाषा में मर्ज कहा जाता है) का जवाब होता है। वैसे एक शिक्षक भी तो बालकों की समस्याओं का निदान (Diagnosis) करता है और आवश्यकतानुसार उपचारात्मक शिक्षण (Remedial Teaching) भी। अतः एक शिक्षक को चिकित्सक की तरह बालकों को प्रश्न करने के लिए प्रेरित करने और उसकी समस्या का समाधान करने का हर सम्भव प्रयास करने की कोशिश करनी चाहिए। किंग्स et. al. (2016) के अनुसार शरीर भगवान का मन्दिर है। अतः अपनी कक्षा के बालकों के वृद्धि और विकास के लिए शिक्षक को एक चिकित्सक (सीसीईआई, 2008) और अन्य कई भूमिकाएं (एन.सी.एफ.टी.ई.,2009, p.36) निभाने के लिए तैयार होने की जरुरत है।

हुनर को दबाने की कोशिश बनाम भाषा

भाषा को परिभाषित करते समय उसकी उपयोगिता (विचारने, महसूस करने और प्रतिक्रिया करने) को भूलकर उसे केवल सम्प्रेषण का माध्यम मान लेने (कुमार, 1994, p.1) की भूल बिल्कुल एक बालक को कक्षा में या परिवार में कुछ भी पूछने से पहले ही उसे यह कहकर चुप करा देने की है कि तुम्हें कुछ नहीं आता। इससे भी परे कभी-कभी कुछ विशेष योग्यता वाले शिक्षक बालकों के पूछने पर चुप्पी लगाने के लिए, ज्ञान की प्रथम सीढ़ी जिसे भाषा कहते हैं. को भी ऊँचे और नीचे होने का दर्जा देकर बालकों पर बोलने के लिए शब्दों का स्वयं के द्वारा चयन करने पर ही अंकुश लगा देते हैं (बरबियाना स्कूल के आठ बच्चे, 1996) जबकि सत्यता यह है कि बच्चों में भाषा की जन्मजात क्षमता होती है। हम रोजमर्रा के अनुभवों से जानते हैं कि.ज्यादातर बच्चे, स्कूल की शिक्षा की शुरुआत से पहले ही भाषा की जटिलताओं और नियमों को आत्मसात कर पूर्ण भाषिक क्षमता रखते हैं (एन.सी.एफ., 2005, p.41)। यहाँ तक कि भिन्न प्रतिभा वाले बच्चे, जो बोल नहीं पाते वे भी अपनी अभिव्यक्ति के लिए उतने ही जटिल वैकल्पिक संकेतों और प्रतीकों का विकास कर लेते हैं (एन.सी.एफ., 2005, p.41)। अतः एक शिक्षक को चाहिए कि वह बालक की भाषायी क्षमताओं को पहचाने (एन.सी.एफ., 2005, p.41) जिससे बालकों का स्वयं और अपनी सांस्कृतिक जड़ों के प्रति विश्वास बढेगा। इसके अतिरिक्त शिक्षक भाषा सम्बन्धी अक्षमता को दूर करने के लिए मानक संकेत अथवा मानक भाषा अपनाए। अच्छा होगा यदि शिक्षक बालक की घरेलू भाषा (ओं) (एन.सी.एफ., 2005, p.42) में ही शिक्षण कराए एवं कक्षा में बहु-भाषी वातावरण तैयार करें। कई बार शिक्षकों की भी यह समस्या रहती है कि वे अन्य भाषा से आये शब्दों को समझ नहीं पाते हैं, ऐसे में स्वयं की कमी को स्वीकार न कर पाने के कारण भी बच्चों के हुनर को दबाने की कोशिश की जाती है। सही शिक्षक को यह जानने का प्रयास करना चाहिए कि प्रश्न बच्चे के मस्तिष्क में क्यों, और कैसे, आया। शिक्षक यदि प्रश्न की उत्पत्ति की तह तक जा सकने की योग्यता और क्षमता रखता है तो उसे वह करना चाहिए। शिक्षक यदि अपने में सुकरात बनने की क्षमता उत्पन्न करे तो उसे कई प्लेटो और मिल जायेंगे।

सभ्य (?) स्कूल: ऊँची आवाज में बात करने की मनाही

सुबह-सुबह किसी चौराहे पर खड़े हो जाइये, रंग-बिरंगी तितलियों जैसे विभिन्न रंगों के विद्यालय गणवेश में

सराबोर होकर नन्हें-नन्हें बच्चों को खिलखिलाते हुए स्कूल जाते देखते ही बनता है कि भविष्य ऐसा ही होना चाहिए। लेकिन स्कूल की चार-दीवारी के बीच पहुँच कर यह खिलखिलाहट ग़ायब भी होने लगती है जब उनकी पूछने की क्षमताओं पर अंकुश लगा कर चुप बैठे रहने को कहा जाता है। भाग-दौड़ के खेलों पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है क्योंकि सभ्य लोगों के लिए यह बच्चों का हुडदंग मचाना कहलाता है यदि खुलकर जरा बच्चे जोर से हँसने भी लग जांए तो वह भी असभ्य ही है। बच्चों को सभ्य बनाने की होड़ में अभिभावक भी चुप्पी साध लेते हैं। ऐसे में बच्चे का मनोबल बढ़ाने वाले दोनों पक्षों से जब निराशा हाथ लगती है तो बच्चा अपने प्रश्नों को पूछने की हिम्मत ही नहीं जुटा पाता। यहीं से उसे लगने लगता है कि कक्षा में हमेशा चुप बैठे रहना ही सभ्यता और अनुशासन है। कक्षा में चुप्पी बनाए रखने से संबंधित जो नियम होते हैं जैसे- एक बार में एक ही बच्चा बोले या तभी बोलो जब सही उत्तर पता हो, इस तरह के नियम समानता और बराबर अवसर देने के मूल्यों को कमज़ोर बनाते हैं और उन्हें क्षति पहुँचाते हैं। ऐसे नियम उन प्रक्रियाओं को भी हतोत्साहित करते हैं जो बच्चों की सीखने की प्रक्रिया में अंतर्निहित होती हैं और सहपाठियों में समुदाय की भावना को विकसित होने से भी रोकते हैं (एन.सी.ई.आर.टी., 2005, pp.92-98)। किसी ने कभी पक्षियों को तो विद्यालय जाते नहीं देखा फिर कैसे वे अपने हुनर में माहिर होते हैं। अतः बच्चों को चार-दीवारी से बाहर खुले मैदानों में प्रकृति का अनुशासन सीखने की स्वतंत्रता देने की ज़रूरत है। खुले आसमान के नीचे पुरज़ोर चिल्लाने की आज़ादी दो, फिर देखो कैसे विकास के मधुर सुर निकलते हैं।

देखभाल बनाम निजता का दमन

आजकल दोपहर को भोजन के अवकाश में भी शिक्षक को कक्षा छोड़ने की मनाही होती है, बच्चे एक साथ बैठकर अपनी मर्जी से किसी के साथ अगर खाना भी चाहें तो नहीं खा सकते। शाला पूर्व शिक्षा और देखभाल की यह मांग है कि छोटे-छोटे बच्चों की उचित देखभाल हो, उनके सर्वांगीण विकास के लिए पर्याप्त अवसर और अनुभव दिए जाएँ। सर्वांगीण विकास में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक विकास और विद्यालय के लिए तैयारी शामिल हैं (एन.सी.एफ., 2005, p.74)। एक तरफ विद्यालयों में अनुशासन और देखभाल के नाम पर औपचारिकता पूरी करने के साथ निजता और समानता के अधिकार को छीना जा रहा है तो दूसरी तरफ सरकारी कार्यक्रमों में दी जाने वाली सेवाओं में गुणवत्ता की नज़र से बहुत भिन्नता है और ज्यादातर वह निम्न कोटि की ही हैं। अधिकांश बच्चों को विशेषकर ग़रीब और समाज के हाशिये पर रहने वाले बच्चों को प्रारम्भिक देखभाल के दायरे में शामिल नहीं किया जाता और अक्सर उन्हें उनके हाल पर ही छोड़ दिया जाता है (एन.सी.एफ., 2005, p.75)। अतः प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा एवं देखभाल की पाठ्यचर्या के ढांचे और शिक्षाशास्त्र को इस सर्वांगीण परिप्रेक्ष्य पर आधारित होने की ज़रुरत है जिसमें विकास के विभिन्न क्षेत्रों में, प्रत्येक स्तर पर बच्चों के लक्षणों और अनुभवों के अर्थों में उनकी अधिगम की जरूरतों को ध्यान में रखा जाए (एन.सी.एफ., 2005, p.74)।

आपस में नहीं मुझ से पूछो

भाषा हो या विज्ञान किसी भी कक्षा के शिक्षक को यह कतई नागवार गुजरता है जब बच्चे एक-दूसरे को कुछ सिखाने के लिए भी आपस में बात करते हैं अकसर कक्षा में शिक्षक को यह कहते देखा जा सकता है कि आपस में नहीं मुझसे पूछो। ऐसी स्थिति में बालक के ज्ञान को खुलकर सामने आने का अवसर ही नहीं मिल पता है और भय के कारण वह भविष्य में कभी भी किसी बात को अपने सहपाठियों से कहने में संकोच करने लगता है, इससे भी कक्षा में चुप्पी की संस्कृति को बढ़ावा मिलने लगता है। एक शिक्षक को शिक्षाशास्त्र का विशेषज्ञ होने के नाते यह समझ होनी ही चाहिए कि तर्क, समानता और वैयक्तिक स्वायत्तता की अवधारणाएं आपस में गहनता से जुड़ी हुई हैं (एन.सी.एफ., 2005, p.32)। एक नवाचारी शिक्षक को यह समझने की जरुरत है कि समान सामुदायिक भावना के साथ प्रक्रियाओं का हिस्सा बनकर सीखने के लिए सभी बच्चों को शामिल किया जाना अति-आवश्यक है (दीवान एंड दीवान, 2016)। ऐसे में आपस में नहीं मुझ से पूछो के बजाय, खुली और

स्वस्थ विचारधारा अपनाने के अतिरिक्त उनके आपस के विचारों को खुला मंच प्रदान करना चाहिए। इसके लिए समूह परिचर्चा, द्वन्द्व परिचर्चा, कक्षा-कक्षा/समूह के मध्य अन्ताक्षरी प्रतियोगिता, अधिक प्रश्न पूछने पर पुरस्कार आदि के तरीके अपनाने चाहिए।

उदाहरण से खुशनुमा माहौल बनाने की कला एवं प्रश्न पूछने की प्रेरणा

हमें बच्चों को विद्यालय में क्यों पढ़ाना चाहिए, जैसे प्रश्न के लिए प्रत्येक की सामान्य अनुक्रिया यही रहती है कि उसे एक अच्छा नागरिक बनाना है (दीवान, 2010) लेकिन यह भी एक मानी हुई बात है कि बच्चों में सीखने और अपने आस-पास की दुनिया को समझने की स्वाभाविक इच्छा होती है। इसलिए शुरुआती वर्षों में अधिगम बच्चों की अभिरुचियों और प्राथमिकताओं के मुताबिक होना चाहिए और बच्चों के अनुभवों में संदर्भित होना चाहिए, न कि औपचारिक रूप से बनाया हुआ (एन.सी.ई.आर.टी., 2005, p.74)। एक शिक्षक को बिना संकोच भाषाई धर्मवाद और भाषाई जातिवाद से मुक्त होकर, मातृभाषा की स्वतन्त्रता के साथ, आज श्रेष्ठतम बनाने की आबो-हवा में जबरदस्ती भाषा को थोपने से बचकर व्यावहारिक उदाहरणों के द्वारा कक्षा के वातावरण को खुशनुमा बनाने की कला विकसित करनी चाहिए। उदाहरण के लिए यदि गणित विषय में BODMAS का नियम पढ़ाने के लिए "पहले का को काटिए, पीछे भागा हार। ता पीछे ऋण-धन यही भिन्न व्यवहार" से भी समझाया जा सकता है। कुछ पुराने उदाहरणों से जैसे "बरसो राम धड़ाके से, बुढ़िया मर गई फ़ाके से" का भी सहारा लिया जा सकता है।

निष्कर्ष

प्रश्न न पूछने का जितना हर्जाना भारतीय सभ्यताओं और समाज ने भरा है उतना किसी और ने नहीं। इस बात का दंश हमेशा से रहा है कि भारतीय ज्ञान की जड़ें मजबूत तो बहुत हैं लेकिन उन तक पहुंचा नहीं जा सकता क्योंकि सामर्थ्य होने के बावजूद हमें उनके किसी छोर का पता जो नहीं है। जो ज्ञान था वो जानने वालों के साथ ही चला गया। हो सकता है यदि सवाल करने की किसी ने हिम्मत उठाई होती तो दुनिया भर के आविष्कारी पेटेन्टों में से ज़्यादातर हमारे ही नाम होते। वैसे आज के उभरते हुए परिप्रेक्ष्य में बच्चों की क्षमताओं, आचारों-विचारों, व्यवहारों और आकांक्षाओं को लेकर कोई एक मानक पूरी तरह से सटीक कार्य करने में सक्षम नहीं हो सकता। क्योंकि सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक रूप से भिन्न पृष्ठभूमियों से आने के कारण विभिन्नताएं विद्यमान रहती हैं। ऐसे में वैश्विक रूप से कोई नयी शिक्षा पद्धति विकसित करने की जरुरत नहीं हैं, बल्कि मौजूदा शिक्षा पद्धतियों को परिमार्जित करके उनमें वर्तमान सन्दर्भ के गुण समावेशित करने की आवश्यकता है। आज जरुरत है तो नियमों में बदलाव करने की और बालकों को स्व-अनुशासन सिखाने की ताकि आन्तरिक रूप से बालक को प्रेरित किया जा सके। प्रताड़ित करके बालक को विरोधी और विद्रोही बनाने के बजाय बार-बार प्रश्न करने जैसा दुराग्रही बनाना ज्यादा अच्छा है।

सन्दर्भ

1. चाइल्ड केयर एजुकेशन इंस्टिट्यूट (सीसीईआई) (2008). टीचर्स रोल्स एंड रेस्पोंसिबिलिटीज. टीचर एनरिच्मेंट ट्रेनिंग सोल्यूशन, 3 (8), ऑनलाइन. रिट्रीव सितम्बर 2, 2017, फ्रॉम http://www.cceionline.com/newsletters/August_08.html
2. एन.सी.ई.आर.टी. (2005). *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005*. नयी दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी.
3. एन.सी.टी.ई. (2009). *शिक्षक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2009*. नयी दिल्ली
4. किंग्स, एस.वी., बर्गेस, इ.ओ., अकिन्येला, एम., काउंट-स्प्रिग्स, एम. एंड पार्कर, एन. (2016). *योर बॉडी इज गोड्स टेम्पल. रिसर्च ऑन एजिंग*, 27(4), 420-446. doi:10.1177/0164027505276315

5. कुमार, कृष्ण (1994). *द चाइल्ड्स लैंग्वेज एंड द टीचर : ए हैंडबुक*. नयी दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत.
6. टीचर्स डे 2017: अनट्रेंड टीचर्स गेट टू इयर्स टू क्वालीफाई एनआईओएस डी.एल.एड. ओर बी.एल.एड. (2017, सितम्बर 4). एनडीटीवी. रिट्रीव सितम्बर 4, 2017, फ्रॉम http://www.ndtv.com/education/teachers-day-2017-untrained-teachers-get-two-years-to-qualify-nios-d-el-ed-or-b-el-ed-1745945
7. डेलर्स, जेक्स (1996). *लर्निंग: द ट्रेजर विदिन*. पेरिस: यूनेस्को.
8. दवे, रमेश (2010). *शिक्षा में नव चिन्तन*. भोपाल: मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी.
9. दीवान, एच. के. (अगस्त, 2010). *वैक्सिंग क़ुएस्तिओन ऑफ़ सोशल साइंस*. रिट्रीव फ्रॉम https://www.researchgate.net/publication/308200675_Vexing_questions_of_Social_Science
10. दीवान, एच. के. एंड दीवान, एस. (सितम्बर, 2016). पूअर लर्निंग अमंग सोशियली मर्जिनलाइज्ड़ चिल्ड्रन सोशिओ-कल्चरल फैक्टर्स एंड चेलेन्जेज़ रिट्रीव फ्रॉम https://www.researchgate.net/publication/308038984_Poor_Learning_among_Socially_Marginalised_Children_Socio-_Cultural_Factors_and_Challenges
11. बारबियाना स्कूल के आठ बच्चे (1996). *अध्यापक के नाम पत्र*. (सरला मोहनलाल, अनुवादक) नयी दिल्ली: ग्रन्थ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड. [यह इटली के एक ग्रामीण अंचल में बसे बारबियाना समुदाय के आठ बच्चों द्वारा, उनके स्वयं के अनुभवों को व्यक्त करने के लिए लिखी पुस्तक है, जिसका सरल हिन्दी अनुवाद सरला मोहनलाल ने किया है].
12. मदर आस्क्ड नियरली 300 क्वेश्चन्स अ डे, स्टडी फाइंड्स. (2013, मार्च 28). द *टेलीग्राफ*. रिट्रीव सितम्बर 01, 2017, फ्रॉम http://www.telegraph.co.uk/news/uknews/9959026/Mothers-asked-nearly-300-questions-a-day-study-finds.html
13. शर्मा, प्रेमपाल (2014). शिक्षा के सरोकार. नयी दिल्ली: सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन.
14. शर्मा, सी. बी., एंड शर्मा, पी. के. (2017). *सा विद्या या विमुक्तये*. नयी दिल्ली: कौटिल्य प्रकाशन.
15. शिबले, आइक (2010, मार्च 09). द *टीचर एज जनरल प्रैक्टिशनर* रिट्रीव सितम्बर 2, 2017, फ्रॉम https://www.facultyfocus.com/articles/teaching-careers/the-teacher-as-general-practitioner/